मोदी के एजेंडे में फिर फंस गया विपक्ष !

अमितेश

जेडीयू की गैर-मौजूदगी में 17 विपक्षी दलों के नेताओं की दिल्ली में मैराथन बैठक हुई और मीरा कुमार के नाम पर मुहर लग गई। ऐलान कांग्रेस अध्यक्षा सोनिया गांधी ने किया और इसके साथ ही सभी दलों से मीरा कुमार के लिए समर्थन की अपील भी कर दी।

अब राष्ट्रपति चुनाव की लड़ाई 'दलित' बनाम 'दलित' की हो गई है। मुकाबला रामनाथ कोविंद और मीरा कुमार के बीच है। लेकिन, मीरा कुमार की उम्मीदवारी के बाद चर्चा इस बात पर हो रही है क्या विपक्ष के पास कोई दूसरा विकल्प नहीं था?

क्या विपक्ष बीजेपी के दलित कार्ड के खिलाफ कुछ दूसरा दांव चलने की हिम्मत नहीं जुटा सका। जवाब ना में ही मिलेगा। इस वक्त विपक्ष मोदी के दलित दांव से इस कदर हैरान और परेशान है कि उसको समझ में ही नहीं आ रहा था कि आखिरकार किस तरह से निपटा जाए।

बीएसपी अध्यक्ष मायावती के रामनाथ कोविंद को लेकर नरम रूख ने पहले ही विपक्ष को परेशान कर दिया था। डर था कहीं मायावती भी दलित सियासत की मजबूरी के नाम पर नीतीश की राह ना पकड़ लें।

लिहाजा, तमाम नामों को अलग रखकर बाबू जगजीवन राम की बेटी मीरा कुमार के नाम पर ही मुहर लग गई। मोदी ने 2019 को ध्यान में रखकर ऐसा मास्टर स्ट्रोक खेला जिससे कांग्रेस समेत पूरे विपक्ष का चक्रव्यूह फिलहाल फेल होता नजर आ रहा है।

अगर ऐसा नहीं होता तो विपक्ष 'दलित कार्ड' के ट्रैप में आने के बजाए किसी आदिवासी या फिर किसी पिछड़े-अति पिछड़े व्यक्ति को ही अपने उम्मीदवार के तौर पर सामने लाकर मोदी-शाह की जोड़ी को जवाब देता। लेकिन, ऐसा हो न सका। अब तो लगता है हर मुद्दे पर एजेंडा मोदी सेट कर रहे हैं, जिस एजेंडे पर झक मारकर भी विपक्ष को आना पड़ता है।

दरअसल, जब विपक्ष ने दलित नेता को ही आगे करने का फैसला किया तो उस कड़ी में मीरा कुमार के अलावा, महाराष्ट्र के पूर्व मुख्यमंत्री सुशील कुमार शिंदे और बाबा साहब भीमराव अंबेडकर के पौत्र प्रकाश अंबेडकर का भी नाम सामने आ रहा था। लेकिन, सोनिया गांधी की पसंद मीरा कुमार बाकी सब पर भारी पड़ी।

शायद विपक्ष को लगा कि हारना तय है। लेकिन, जब बात महज संदेश

राष्ट्रपति

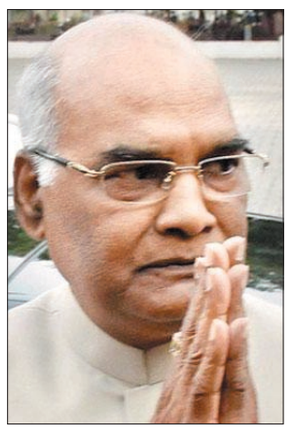

चुनाव

देने की ही है तो मीरा कुमार को आगे कर एक बेहतर संदेश दिया जा सकता है। दरअसल मीरा कुमार और रामनाथ कोविंद में काफी समानताएं हैं।

रामनाथ कोविंद यूपी के रहने वाले हैं और बिहार के गवर्नर रह चुके हैं। कोविंद दो बार यूपी से ही राज्यसभा सांसद भी रहे हैं। जबकि, मीरा कुमार बिहार की रहने वाली हैं, बिहार के सासाराम से सांसद बनने से पहले यूपी के बिजनौर से लोकसभा सांसद रह चुकी हैं। दोनों का कनेक्शन बिहार और यूपी से ही है।

हालांकि, रामनाथ कोविंद गैर-जाटव दलित तबके से आते हैं, लेकिन, मीरा कुमार जाटव तबके से आती हैं। बीजेपी का फोकस यूपी में गैर-जाटव तबके के दलित समुदाय पर रहा है, जिन्होंने पिछले यूपी विधानसभा और लोकसभा चुनाव में बीजेपी का साथ दिया था।

दूसरी तरफ, मीरा कुमार के बहाने कांग्रेस ने मायावती को साधा है जो खुद जाटव समुदाय से आती हैं और आज भी उस समुदाय की वो सबसे बड़ी नेता हैं। इसके अलावा विपक्ष को लग रहा था कि मीरा कुमार का महिला होना, एक साथ दलित-महिला दोनों को साधने में सफल रहेगा। यही बात प्रकाश अंबेडकर और सुशील कुमार शिंदे पर भारी पड़ गई।

पूर्व राजनयिक मीरा कुमार कांग्रेस के बड़े नेता बाबू जगजीवन राम की पुत्री हैं। इसीलिए मीरा कुमार को राजनीति विरासत में मिली थी। अपनी विदेश सेवा की नौकरी के बाद 1985 में वो पहली बार यूपी के बिजनौर से सांसद बनी। इस चुनाव में उन्होंने मायावती और रामविलास पासवान दोनों को हराया था।

इसके बाद वो दिल्ली के करोलबाग से आठवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं लोकसभा के लिए चुनी गई। मीरा कुमार यूपीए-2 कार्यकाल के दौरान 2009 से 2014 तक लोकसभा की स्पीकर बनाई गई। इस दौरान वो बिहार के सासाराम से सांसद थी।

विपक्ष को लगता है कि स्पीकर के तौर पर सभी दलों के भीतर उनकी स्वीकार्यता और अलगअलग दलों के नेताओं के साथ उनके संबंध का फायदा भी उन्हें मिल सकता है। लिहाजा उनका नाम आगे कर दिया गया।

अब विपक्ष की कोशिश है कि एक बार फिर से मीरा कुमार के नाम पर बाकी दलों को राजी किया जाए। खास तौर से जेडीयू अध्यक्ष नीतीश कुमार को साथ लाने के लिए एक कोशिश फिर से की जाएगी।

नीतीश के साथ बिहार के गठबंधन में शामिल आरजेडी अध्यक्ष लालू यादव ने विपक्षी दलों की बैठक के बाद साफतौर पर कहा कि मैं नीतीश कुमार से इस मामले में बात कर फिर से फैसले पर पुनर्विचार के लिए कहूंगा।

विपक्ष की तरफ से विरोध करने की खानापूर्ति के कारण उसके अंदर का अंतरविरोध सामने आ गया है। लेकिन, विपक्षी नेताओं को शायद अबतक ये बात समझ में नहीं आ रही कि वो कैसे धीरे-धीरे मोदी के ट्रैप में फंसते जा रहे हैं।

(फर्स्टपोस्ट)

PIXTOON **छायाव्यंग्य**

प्रति,
माननीय श्री प्रणब मुखर्जी
राष्ट्रपति
भारत

माननीय महोदय,
कृपया मेरा त्यागपत्र स्वीकार करने की कृपा करें क्योंकि मैंने आपके पद के लिए आवेदन करना तय किया है।

बहुत धन्यवाद और शुभकामनाएं
आपका
रामनाथ कोविंद

https://www.facebook.com/DailyChhattisgarh सोशल मीडिया से

पत्रकारों को अप्रिय सत्य से बचना चाहिए -सुमित्रा महाजन

नई दिल्ली, 23 जून (इंडियन एक्सप्रेस)। लोकसभा अध्यक्ष और भाजपा की वरिष्ठ नेता सुमित्रा महाजन ने पत्रकारों को सलाह दी है कि पत्रकारों को अप्रिय सत्य से बचना चाहिए। उन्होंने यह भी सलाह दी कि पत्रकार मिथकीय चरित्र नारद से काफी कुछ सीख सकते हैं।

सुमित्रा महाजन बुधवार को आरएसएस से जुड़े संगठन इंद्रप्रस्थ विश्व संवाद केंद्र के देवर्षि नारद जयंती पत्रकार सम्मान समारोह में मुख्य अतिथि के तौर पर उपस्थित थीं।

लोकसभा अध्यक्ष सुमित्रा महाजन ने कहा कि पत्रकार को अपने काम में निष्पक्षता बनाए रखनी चाहिए, 'सुंदर भाषा' का इस्तेमाल करना चाहिए और कभी कभी अप्रिय सत्य को नजरअंदाज करना चाहिए। उन्होंने पत्रकारों से राष्ट्रहित में रिपोर्ट करने संबंधी सवाल का भी समर्थन किया। मंच पर अन्य वक्ता के रूप में आरएसएस के शाखा संपर्क प्रमुख अरुण कुमार और रक्षा विशेषज्ञ मारूफ रजा भी मौजूद थे।

महाजन ने कहा कि पत्रकार मिथकीय चरित्र नारद मुनि से बहुत कुछ सीख सकते हैं, खासकर निष्पक्षता को लेकर। उन्होंने कहा, लेकिन जो भी कहा जाना चाहिए वह सुंदर भाषा में कहा जाना चाहिए। ऐसी विनम्र भाषा का इस्तेमाल करते हुए सरकार से बहुत कुछ संवाद किया जा सकता है। सत्यं ब्रूयात, प्रियं ब्रूयात, ना ब्रूयात अप्रियं सत्यं। यानी सत्य बोलना चाहिए, प्रिय बोलना चाहिए,

(बाकी पेज 5 पर)

ऐसा क्या हुआ कि पीएम न बन पाने के बाद अडवानी राष्ट्रपति बनने का आखिरी मौका भी चूक गये ?

जिन रामनाथ कोविंद को एनडीए ने राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार बनाया है उनका भाजपा में प्रवेश ही तब हुआ था जब लाल कृष्ण अडवानी भाजपा के शिखर पुरुष हुआ करते थे...

हिमांशु शेखर

जो लोग भारतीय जनता पार्टी को लंबे समय से देख रहे हैं, वे यह मानते हैं कि कभी लाल कृष्ण अडवानी पार्टी के सबसे बड़े नेता हुआ करते थे। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी से भी बड़े। कहा तो यह भी जाता है कि वाजपेयी को पार्टी का चेहरा अडवानी ने ही बनाया था। उन्हें लग गया था कि जिस तरह की उनकी अपनी छवि है, उसमें भाजपा का उतना व्यापक विस्तार नहीं हो पाएगा जितना उदार छवि वाले वाजपेयी को आगे करके हो सकता है।

अडवानी के आगे किए हुए वाजपेयी 1998 में प्रधानमंत्री बन गए। साल 2002 के गुजरात दंगों के बाद यही वाजपेयी उस समय के गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी को हटाना चाहते थे लेकिन अडवानी चट्टान की तरह खड़े हो गए। इसके बाद अटल बिहारी वाजपेयी कुछ न कर सके और मोदी बच गए। लाल कृष्ण अडवानी को लगता था कि वाजपेयी के बाद उनका नंबर आएगा। उन्हें 2009 में भाजपा के अभियान की अगुवाई का मौका भी मिला, लेकिन वे पार्टी को जिता नहीं पाए। इसके बाद जब कांग्रेस की अगुवाई वाली मनमोहन सिंह सरकार के खिलाफ माहौल बनना शुरू हुआ तो 2014 के अभियान की कमान पार्टी ने उनके हाथों से लेकर नरेंद्र मोदी को दे दी। उसी वक्त यह तय हो गया कि प्रधानमंत्री बनने का अडवानी का सपना अब शायद ही पूरा हो पाए। रही-सही कसर 2014 के चुनावों में भाजपा को मिले स्पष्ट बहुमत ने पूरी कर दी।

उसके बाद से लगातार यह लग रहा था कि लाल कृष्ण अडवानी को

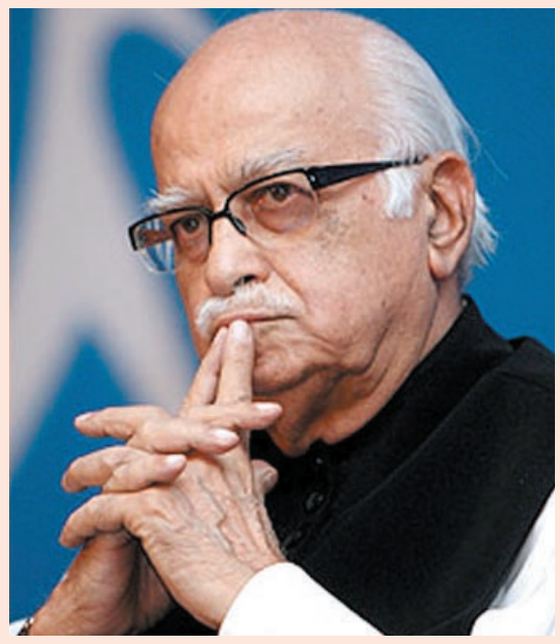

नरेंद्र मोदी राष्ट्रपति बना सकते हैं। पार्टी के प्रमुख नेताओं में शुमार किए जाने वाले नितिन गडकरी ने एक-दो मौकों पर ऐसी बातें कही भी थीं। लेकिन जानकार बताते हैं कि जिन नरेंद्र मोदी को बचाने के लिए अडवानी वाजपेयी और उनके बीच चट्टान की तरह खड़े हो गए थे, वही नरेंद्र मोदी अब अडवानी और राष्ट्रपति के पद के बीच आकर खड़े हो गए। उन्होंने राष्ट्रपति बनने की अडवानी की इच्छा के बावजूद पार्टी के एक ऐसे नेता को राष्ट्रपति बनाने का निर्णय लिया जो पार्टी में वरिष्ठता और प्रभाव के मामले में अडवानी के मुकाबले कभी कहीं नहीं रहा। भाजपा की ओर से राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार रामनाथ कोविंद 1991 में भाजपा में आए। तब तक अडवानी राम मंदिर आंदोलन के नायक बन चुके थे।

अब सवाल उठता है कि आखिर ऐसा क्या हुआ कि कभी भाजपा के लौह पुरूष कहे जाने वाले अडवानी पार्टी में इतने अलग-थलग पड़ गए? भाजपा के जो नेता अडवानी के सहारे अपनी राजनीति चला रहे थे, आज वे सभी नरेंद्र मोदी और रामनाथ कोविंद का गुणगान करते दिख रहे हैं। इनमें वेंकैया नायडू, अरुण जेटली, अनंत कुमार और रविशंकर प्रसाद प्रमुख हैं। सुषमा स्वराज को अपवाद माना जा सकता है।

भाजपा को और अटल-अडवानी समेत पार्टी के कई प्रमुख नेताओं को करीब से देखने वाले एक वरिष्ठ पत्रकार कहते हैं, लाल कृष्ण अडवानी के साथ जो हो रहा है, उसके लिए वे खुद ही जिम्मेदार हैं। पार्टी में उन्होंने सही लोगों को न तो बढ़ाया और न ही उनका बचाव किया, जबकि राजनीतिक अवसरवादिता वाले (बाकी पेज 5 पर)

क्या वसुंधरा वही गलती दोहरा रही हैं जो शिवराज ने की ?

अहम मुद्दों पर असहमति होने के बावजूद वसुंधरा राजे सरकार और आरएसएस से जुड़े भारतीय किसान संघ में समझौता होने से राजस्थान के बाकी किसान संगठन खासे नाराज हैं...

अवधेश आकोदिया

चार जून को जब मध्यप्रदेश सरकार और आरएसएस से संबद्ध भारतीय किसान संघ के बीच समझौता हुआ तो मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान और उनके कारिंदे अपनी पीठ थपथपा रहे थे कि किसान आंदोलन को उन्होंने शांतिपूर्वक तरीके से निपटा दिया, लेकिन छह जून को जब आंदोलन ने हिंसक रूप ले लिया तो सरकार के होश फाख्ता हो गए। इसके बाद उसने कांग्रेस ने साजिश रचने का आरोप लगा पल्ला झाड़ने की कोशिश की।

शुरूआती तौर पर ही सही मध्यप्रदेश जैसी कहानी राजस्थान में भी दोहराई जा रही है। प्रदेश में 15 जून से शुरू हुआ किसान आंदोलन 19 जून को देर रात सरकार और आरएसएस से संबद्ध भारतीय किसान संघ के बीच समझौते के बाद समाप्त हो गया। हालांकि आंदोलन में शामिल राष्ट्रीय किसान महापंचायत व अखिल भारतीय किसान सभा के नेता समझौते को सरकार और भारतीय किसान संघ के बीच नूरा कुश्ती बता रहे हैं। उन्होंने न सिर्फ आंदोलन जारी रखने की घोषणा की है, बल्कि उसे और आक्रामक करने का भी ऐलान किया है।

मध्यप्रदेश में कुछ ऐसा ही हुआ था। सरकार और भारतीय किसान संघ के आंदोलन समाप्त करने की घोषणा के बाद भारतीय किसान मजदूर संघ व अन्य किसान संगठनों ने वहां इसी प्रकार से आंदोलन जारी रखने की घोषणा की थी। तो क्या यह माना जाए कि राजस्थान में किसान आंदोलन मध्यप्रदेश की तर्ज पर आगे बढ़ रहा है और वसुंधरा राजे ने वही गलती दोहरा दी है जो शिवराज सिंह चौहान ने की थी? समझौते के बाद भारतीय किसान संघ के अलावा बाकी किसान संगठन जिस तरह से भौंहें तान रहे हैं उससे तो यही संकेत मिल रहे हैं।

राजस्थान सरकार और भारतीय किसान संघ के बीच हुए समझौते पर गौर करें तो साफ जाहिर होता है कि दोनों पक्षों का जोर किसानों की मांगों पर कम और आंदोलन समाप्ति पर ज्यादा था। भारतीय किसान संघ का 18 से 20 मई तक जयपुर में अधिवेशन हुआ था। इसमें तय हुआ कि प्रदेश के किसानों की समस्याओं के समाधान के लिए सभी संभाग मुख्यालयों पर 15 जून से अनिश्चितकालीन पड़ाव डाला जाएगा। अधिवेशन में 17 सूत्रीय मांगपत्र भी तैयार किया गया। इस मांगपत्र और सरकार के साथ हुए समझौते पर गौर करें तो तीन-चार मुद्दों के अलावा किसी पर भी सहमति नहीं बन पाई।

भारतीय किसान संघ के 17 सूत्रीय मांगपत्र में कर्ज माफ करने, लागत के आधार पर उपज का समर्थन मूल्य तय करने, दूध का समर्थन मूल्य 70 रुपये लीटर घोषित करने, राजस्थान लैंड पूलिंग विधेयक को वापिस लेने, किसानों को प्रति यूनिट की बजाय फ्लैट रेट पर बिजली देने, किसानों की समस्याओं पर चर्चा के लिए विधानसभा का विशेष सत्र बुलाने और स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट को लागू करवाने के लिए विधानसभा में प्रस्ताव पारित करने सरीखी बड़ी मांगें शामिल थीं। हैरानी की बात है कि सरकार ने इनमें से एक पर भी सहमति नहीं दी।

तो सवाल उठना लाजमी है कि मांगें नहीं मानने के बाद भी समझौता कैसे हो गया। इस बारे में भारतीय किसान संघ के प्रदेश महामंत्री कैलाश गंदालिया गोलमोल जवाब देते हैं। वे कहते हैं, हम राजस्थान सरकार से किसानों की समस्याओं के समाधान के लिए लगातार मांग कर रहे थे, लेकिन सरकार ध्यान नहीं दे रही थी। इसलिए हमारे संगठन ने संभाग स्तर पर महापड़ाव डाला। इसका सुखद परिणाम निकला। मूंग का समर्थन मूल्य बढ़ाकर 5575 व मूंगफली का 4450 रुपये करने पर सहमति बनी है। साथ ही समर्थन मूल्य से कम खरीद को अपराध की श्रेणी में लाने के लिए गुजरात व मध्यप्रदेश की तर्ज पर कानून बनाया जाएगा। इसके अलावा प्रदेश में सरकार की ओर से प्याज खरीद केंद्र खोले जाएंगे। (बाकी पेज 5 पर)

जिनकी कहानियों में सेक्स अपील थी और खौफ भी

लूसी स्कोल्स

नई दिल्ली, 23 जून (बीबीसी)। हाल ही में एक अंग्रेजी फिल्म रिलीज हुई जिसका नाम था, माय कजिन रैशेल। ये फिल्म एक सस्पेंस थ्रिलर एक रोमांटिक थ्रिलर थी, जिसका निर्देशन रोजर मिशेल ने किया था। फिल्म में मुख्य किरदार अभिनेत्री रैशेल वीज ने निभाया था।

ये फिल्म ब्रिटिश लेखिका डैफ्ने ड्यू मॉरिया के इसी नाम के उपन्यास पर आधारित थी। डैफ्ने ड्यू मॉरिया को मशहूर ब्रिटिश लेखिका तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनके उपन्यासों को, उनके काम को उतनी शोहरत नहीं मिली, जितने की वो हकदार थीं।

यहां तक कि उनके उपन्यास रेबेका को टाईम्स के साहित्यिक सप्लीमेंट ने 1938 में बेहद औसत दर्जे का करार दिया था। हालांकि 25 साल बाद उसी टाईम्स अखबार ने रेबेका को बेहद लोकप्रिय साहित्यिक कृति बताया। रेबेका पर एक फिल्म भी बनी।

असल में डैफ्ने ड्यू मॉरिया हमेशा ही अपने किरदारों में रहस्य, रोमांच भरती थीं। वो उनके जरिए सेक्स अपील भी पैदा करती थीं और खौफ भी। लेखिका के तौर पर डैफ्ने का करियर लंबा चौड़ा रहा। उन्होंने 81 बरस की अपनी जिंदगी में 16 तो नॉवेल लिख डाले।

इसके अलावा डैफ्ने ने कई कहानियां, जीवनियां, नाटक, आत्मकथा लिखीं और अपने शहर कॉर्नवाल के बारे में भी किताब लिखी। उनकी कई कहानियों और किताबों पर फिल्में बनीं। मसलन उनके उपन्यास रेबेका पर भी फिल्म बनी।

इसकी कहानी एक ऐसी महिला के बारे में है, जिसकी शादी ऐसे शख्स से होती है, जिसकी पहली बीवी मर चुकी होती है। पूरा उपन्यास घर में कैद इस महिला के खौफ के इर्द-गिर्द घूमता है। ये खौफ उसके पति की पहली पत्नी का होता है।

डैफ्ने के कमोबेश हर उपन्यास या कहानी में ऐसे किरदार मिल जाते हैं, जो पढ़ने वाले के अंदर डर पैदा करते हैं। फिर चाहे उनकी कहानी द बर्ड्स हो या फिर माय कजिन रैशेल। द बर्ड्स पर मशहूर निर्देशक अल्फ्रेड हिचकॉक ने फिल्म भी बनाई थी।

इसमें कहानी ये थी कि परिंदों का एक झुंड अमरीका के एक शहर पर हमला बोल देता है। इसी तरह डैफ्ने की लिखी कहानी, डोंट लुक नाऊ पर इसी नाम से निकोलस रोग ने फिल्म बनाई थी। ये फिल्म यूं तो सस्पेंस थ्रिलर थी। इसकी कहानी इटली के वेनिस शहर पर आधारित थी। फिल्म में एक जोड़ा अपनी बेटी का मातम मनाता दिखाया गया है। लेकिन फिल्म की चर्चा इसके हीरो डोनाल्ड सदरलैंड और हीरोइन जूली क्रिस्टी के बीच के सेक्स सीन को लेकर ज्यादा हुई थी। खुद डैफ्ने ने माना था कि निकोलस रोग ने उनकी कहानी के साथ इंसाफ किया था।

हालांकि अल्फ्रेड हिचकॉक ने भी डैफ्ने की कहानियों पर कई फिल्में बनाईं, मगर उनमें से ज्यादातर की कहानियों में छेड़खानी से डैफ्ने नाखुश रहीं। डैफ्ने की कहानियों में किरदारों की सेक्स अपील भी काफी अच्छे से बताई जाती थी।

उनकी कहानी द मेनस में ऐसा ही किरदार गढ़ा गया था। हालिया फिल्म माय कजिन रैशेल में भी यही देखने को मिला। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों फ्रेंचमैन्स क्रीक और जमैका इन में भी रहस्य, रोमांच और ढेर सारी सेक्स अपील आपको पढ़ने को मिलेगी।

लेकिन ये कहना गलत होगा कि डैफ्ने ने सिर्फ सस्पेंस थ्रिलर ही लिखे। उन्होंने साइंस फिक्शन में भी हाथ आजमाया। जैसे कि उनके उपन्यास द हाउस ऑन स्ट्रैंड्स में एक वैज्ञानिक के अजीबो-गरीब रिसर्च का जिक्र है।

वहीं उनकी कहानी द ब्लू लेंसेज में एक महिला जब आंख के ऑपरेशन के बाद आंख खोलती है, तो उसे हर इंसान के सिर पर जानवर का सिर दिखाई देता है। वहीं द ब्रेकथ्रू कहानी में एक मरते हुए लड़के की आत्मा को कैद करने की कोशिश करते हुए दिखाया गया है।

उनकी कहानी द मेनस में एक ऐसी फिल्मी तकनीक का जिक्र है, जिसमें फिल्म के किरदार की सेक्स अपील को सीधे दर्शक को महसूस कराने की कोशिश होती है। डैफ्ने के बारे में ये भी कह सकते हैं कि उन्होंने ब्रेग्जिट की भविष्यवाणी करने वाला उपन्यास भी लिखा था।

असल में डैफ्ने ने 1972 में रूल ब्रिटानिया नाम का उपन्यास लिखा था। इसमें कहानी ये थी कि ब्रिटेन पहले कॉमन मार्केट (यूरोपीय यूनियन का पूर्ववर्ती समूह) का सदस्य बना। फिर ब्रिटेन ने कॉमन मार्केट से खुद को अलग कर लिया।

(बाकी पेज 5 पर)